REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
VOLUME - 13 | ISSUE - 5 | FEBRUARY - 2024

धर्म, अध्यात्म एवं संगीत का अंतर संबंध

रविन्द्र टांक
शोधार्थी, बरकतउल्लाह विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

धर्म :– धर्म शब्द को पढ़ते या सुनते ही मन में श्रीमद् भगवतद गीता का विख्यात श्लोक उभर आता है :–

यदा यदा ही धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम।।

श्री कृष्ण ने कुरूक्षेत्र में कौरवों और पांडवों के युद्ध हेतु खड़ी सेनाओं के मध्य में अर्जुन का रथ ले जाकर अनेक संदेशों, उपदेशों के द्वारा अर्जुन को धर्म युद्ध के लिये प्रेरित करने और अपने वास्तविक विराट स्वरूप का दर्शन कराने के लिए गीता रूप में जो जीवन दर्शन का प्राकट्य किया, वह भी धर्म ही है।

धर्म किसी रूढ़ अर्थ या भाव का बंधन स्वीकार नहीं करता। धर्म का स्वरूप समय, स्थान, समाज आदि के कारण परिवर्तनशील होता है। अधिकांशतः इसके शाब्दिक अर्थ अथवा बाह्य स्वरूप को ही मनुष्य व्यवहार में लाता है। वास्तव में धर्म को जाति से जोड़कर देखना ही उसके स्वरूप को खंडित करता है। कुरूक्षेत्र में अपने गुरूजनों, स्वजनों, भ्राता–बांधवों पर अस्त्र चलाने को लेकर अवसाद की स्थिति में पहुंचे अर्जुन को श्री कृष्ण समझाते हैं कि हे अर्जुन अभी तुम धर्म युद्ध के लिये रण क्षेत्र में उतरे हो वो क्षत्रिय कर्म ही तुम्हारा धर्म है।

जिस तरह एक विद्यार्थी का धर्म विद्यार्जन है, एक चिकित्सक का धर्म चिकित्सा द्वारा रोगी को रोग मुक्त करना है, एक सैनिक का धर्म राष्ट्र की रक्षा शत्रुओं से करना है उसी प्रकार जिस–जिस का जो–जो कर्तव्य है वो ही उसका धर्म है। धर्म के विषय में युद्ध चिंतकों ने इस प्रकार कहा है :–

ई.बी. रायलर – धर्म आध्यात्मिक सत्ताओं में विश्वास है।

मैक्समूलर – धर्म वह मानसिक शक्ति या प्रवृत्ति है जो मनुष्य को अनंत सत्ता का ज्ञान प्राप्त करने में सक्षम बनाती है।

भारतीय दर्शन में धर्म की विषद् व्याख्यायें हैं। शास्त्रों में कहा गया है–यतो धर्मस्ततो जयः। अर्थात् विजय वहीं है जहां धर्म है।

श्री कृष्ण ने युद्धिष्ठिर से कहा था कि मैं तुम्हारे साथ इसीलिये हूँ क्योंकि धर्म तुम्हारे पक्ष में है।

धर्म का अर्थ है धारण करना–धारयति इति धर्म। जो शुभ है, पावन है, सत्य है, सनातन है, वही धारण करने योग्य है। जो हमें मानवता का पाठ सिखाता है वही धर्म है। प्रत्येक व्यक्ति में देवत्व और दानवत्व दोनों का वास होता है। जागृत देव ही मानवता के अस्तित्व का प्रतीक होता है। ''आत्मवत सर्वभूतेषु'' अर्थात् प्राणीमात्र में एक ही ब्रम्हज्योति का दर्शन करना धर्म है।

ऋग्वेद में कहा गया है कि धर्म अलौकिक शक्ति का घोतक है। स्वामी विवेकानंद के अनुसार धर्म वह वस्तु है जिससे पशु मनुष्य तक और मनुष्य परमात्मा तक ऊंचा उठ सकता है। मनुष्य योनि में जन्म लेने भर से ही कोई उच्च कोटि का नहीं हो सकता इसके लिये उसे उच्च कर्म भी करने होते हैं।

सत्य, धर्म, अहिंसा, परोपकार, न्याय आदि वे सद्मार्ग हैं जिस पर चलकर मनुष्य अपने मनुष्यत्व को सिद्ध कर सकता है।

अध्यात्म –

अध्यात्म को एक वाक्य में परिभाषित करना हो तो कहा जा सकता है कि ईश्वर की रचना का एक अंश होने के कारण सभी के साथ अपने संबंधों को सौहार्द और स्नेहपूर्ण रखना।

'सभी' के अंतर्गत पंचभूत सहित प्रत्येक जीव–जंतु, पशु–पक्षी, सहित समस्त सृष्टि इसमें समाहित है। भौतिक वस्तुएं मनुष्य को शारीरिक सुख पहुंचा सकती हैं। मानसिक एवं आत्मिक शांति के लिये तो उसे ईश्वरीय योजना को समझना और साधनारत रहकर अपनी प्रकृति को परिष्कृत करना आवश्यक होता है। एक सामाजिक प्राणी होने के नाते मनुष्य को दैवीय चेतना तक पहुंचने का प्रयास समाज में रहते हुये ही करना है।

मनुष्य का कर्तव्य है कि अंहकार और आत्मतुष्टि छोड़कर दया, करूणा, सहयोग की भावना सहित सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय कर्म करता रहे, यही वास्तविक अध्यात्म है। मनुष्य को कर्म करने की पूर्ण स्वतंत्रता है। मनुष्य के समस्त अनुभव उसके भावी कर्म संचालित करेंगे। कर्म ही इस जीवनावधि में होने वाले हमारे सारे अनुभवों यथा सुख–दुख, लाभ–हानि, हर्ष–विषाद, मान–सम्मान, तृप्ति–असंतोष सभी को संचालित करेंगे। केवल कर्म द्वारा प्रशासित अनुभवों में से हमें गुजरना पड़ेगा। यदि हम अपने अंदर से अपना संचालन ईश्वर की भक्ति, विश्वास और आध्यात्मिक आकांक्षाओं के द्वारा पर्याप्त साधना शक्ति और सहनशीलता के साथ करते हैं तो यह अनुभव हमें प्रभावित किये बिना छोड़कर चले जाएंगे।

यदि सम–विषम परिस्थिति में मनुष्य संकल्पित हृदय से सदमार्ग पर चलता रहे तो उसकी शांति भंग नहीं होगी और वह ईश्वर के अधिक निकट और जीवन की सार्थकता को साकार करने की स्थिति में आयेगा।

प्रकृति में आनंद बिखरा पड़ा है इसे समेटने वाला मन चाहिये। भगवान ने आनंद के लिये ही सृष्टि की रचना की है। प्रकृति अपना सर्वस्व दोनों हाथों से लुटाती है लेकिन मात्र मनुष्य आलस्य और प्रमादवश विस्तर छोड़कर प्रकृति प्रदत्त अनमोल रत्नों को देखने तक का कष्ट उठाना नहीं चाहता। सारे पशु–पक्षी स्वप्रेरणा से सूर्य की पहली किरण के साथ अपने घरों, घोंसलों से निकलकर अपने दैनिक कर्मों में लग जाते हैं। बस मनुष्य ही प्रकृति के वरदानों की अवहेलना करता है। उसे चिंता, तनाव, ईर्ष्या और प्रतिस्पर्धा में जीवन नष्ट करना उचित लगता है। प्रकृति हमसे मिलने को व्याकुल रहती है और हम उसके विविध रंगों–रूपों को देखने की फुर्सत तक नहीं निकाल पाते। हां, प्राकृतिक संसाधनों का सीमापार जाकर दोहन अवश्य करते हैं।

प्रकृति के निकट होना, अर्थात् ईश्वर के निकट होना है। अध्यात्म, ग्रंथों में सिमटा नहीं पड़ा है, वह प्रकृति से मिलकर उसे समझकर, स्वीकार करके ही ग्रंथ रूप में परिणित हुआ है। फिर वह चाहे वेद, भागवत, रामायण या गीता हो या अन्य आध्यात्मिक ग्रंथ सभी में प्रकृति के विभिन्न रूप अपने संपूर्ण सौंदर्य के साथ बिखरे पड़े हैं इसीलिये दशकों बाद भी ये ग्रंथ मनुष्योपयोगी और आत्मोत्थान के साधन बने हुये हैं।

संगीत –

यह अविवादित है कि संगीत सभी कलाओं में सर्वाधिक प्राचीन कला है। आदिमानव ने अपने मनोभावों को प्रकट करने हेतु जो कुछ गुनगुनाया, चाहे वह अविकसित, अस्पष्ट रहा हो, वही संगीत का उद्गम बिंदु हुआ।

प्रकृति पशु–पक्षियों, हवाओं, झरनों आदि की ध्वनियों से स्वयं को प्रकट, प्रदर्शित एवं प्रस्तुत करती है। प्रकृति तो प्रारंभ से सांगीतिक मधुर ध्वनियों को अपने विभिन्न आयामों द्वारा प्रकट करती आ रही है। मनुष्य ने इसे अपनी सभ्यता और संस्कृति के विकास के साथ अन्य बातों सहित संगीत कला का भी परिष्कार किया।

मनुष्य सहित पशु–पक्षी, कीट–पंतगा आदि भी विभिन्न समय परिस्थिति और मनोभावों के प्राकट्य हेतु गायन, नृत्य करना स्वाभाविक क्रिया–कलाप के अंतर्गत करते हैं। भावाभिव्यक्ति, चाहे सुख हो या दुख, हर्ष हो या विषाद का सर्वोत्तम, सर्वाधिक सहज साधन संगीत ही है।

भक्ति मार्ग में तो संगीत का महत्व किसी प्रमाण के बिना ही सिद्ध है। अनेक संतों की रचनाएं संगीत के स्वरों के कारण जन–जन तक पहुंची और अमर हो गईं। रामचरित्मानस इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। गुरूग्रंथ साहब भी रागियों द्वारा गाये जाने से भक्तों को कंठस्थ हो गया।

मीराबाई की पदावलियां, कबीरवाणी, रैदास, सूरदास, सहजोबाई, नानक, हरिदास आदि की भक्ति रचनाएं गेय होने से ही आज भी अत्यंत लोकप्रिय हैं।

घरों में, मंदिरों में गाये जाने वाली आरतियाँ, भजन, कीर्तन, नाम स्मरण आदि सस्वर होते हैं, इससे ये शीघ्र स्मृति में स्थान बनात लेते हैं और प्रभावकारी भी होते हैं। ईश्वर से सहज तादात्म्य स्थापित करने हेतु गेय पदों का अतुलनीय योगदान होता है। इसी प्रकार धर्म, अध्यात्म एवं संगीत का अंतर संबंध स्पष्ट होता है।

संदर्भ –

1. योगवासिष्ठ सर्ग 80 निर्वाण प्रकरण पूर्वाद्ध
2. संगीत दर्शन, विजय लक्ष्मी जैन, राजस्थानी ग्रंथागार जोधपुर,
3. श्रीमद्भगवद् गीता 4–7, डॉ. राधाकृष्णन, हिन्द पॉकेट बुक्स प्रा.लि. दिल्ली